अनुबोधन, खण्ड 1, अंक 4, दिसम्बर 2025, पृष्ठ 150–168
ISSN: 3049-4184 (प्रिन्ट), 3108-1185 (ऑनलाइन)
प्रकाशित: 31 दिसम्बर 2025
जर्नल वेबसाइट: **https://anubodhan.org**
DOI: 10.65885/anubodhan.v1n4.2025.039

भगवद्गीता और अस्तित्वगत चिंता : अर्जुन विषाद का दार्शनिक पुनर्विश्लेषण

डॉ. रेनू चौधरी*

सारांश

भगवद्गीता भारतीय दर्शन का एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें मानव जीवन की गहन अस्तित्वगत समस्याओं का सूक्ष्म विवेचन मिलता है। महाभारत के युद्धक्षेत्र में अर्जुन का विषाद केवल व्यक्तिगत दुर्बलता नहीं है, बल्कि वह मानव अस्तित्व की सार्वभौमिक चिंता, नैतिक द्वंद्व और अर्थ-संकट का प्रतीक है। यह शोधपत्र अर्जुन विषाद को आधुनिक अस्तित्ववादी दर्शन के संदर्भ में पुनर्विश्लेषित करता है तथा यह प्रतिपादित करता है कि गीता का दर्शन अस्तित्वगत संकट से मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त करता है। अर्जुन का विषाद जीवन-मृत्यु, कर्तव्य-अकर्तव्य, हिंसा-अहिंसा, आत्मीयता-नैतिकता जैसे द्वंद्वों से उत्पन्न होता है। यह स्थिति ज्यां-पॉल सार्त्र, कीर्केगार्द और हाइडेगर द्वारा वर्णित 'अस्तित्वगत चिंता' से साम्य रखती है, जहाँ व्यक्ति स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व और अर्थहीनता के भय से ग्रस्त होता है। गीता में अर्जुन युद्ध से पलायन करना चाहता है, जो अस्तित्वगत पलायन का द्योतक है। श्रीकृष्ण का उपदेश अर्जुन को कर्म, ज्ञान और भक्ति के माध्यम से अस्तित्वगत संकट से उबारने का प्रयास है। गीता का कर्मयोग 'कर्तृत्व-बोध' को शुद्ध करता है, ज्ञानयोग 'स्व-स्वरूप' का बोध कराता है और भक्तियोग जीवन को अर्थ और उद्देश्य प्रदान करता है। इस प्रकार गीता अस्तित्वगत चिंता का समाधान समन्वयात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करती है।

---

*सहायक आचार्य, दर्शनशास्त्र विभाग, सी. एम. पी. डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, E-mail: renu.chaudhry2009@gmail.com

मुख्य बिंदु: *भगवद्गीता, अर्जुन विषाद योग, अस्तित्वगत चिंता, अस्तित्वगत पलायन, पाश्चात्य अस्तित्ववादी दर्शन*

भगवद्गीता भारतीय दार्शनिक परंपरा का एक केंद्रीय एवं सार्वकालिक ग्रंथ है, जिसमें मानव जीवन की नैतिक, आध्यात्मिक तथा अस्तित्वगत समस्याओं का अत्यंत गहन और समन्वित विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। महाभारत के भीष्मपर्व में कुरुक्षेत्र के युद्धभूमि पर घटित संवाद के रूप में गीता का प्राकट्य होता है, किंतु उसका महत्व युद्ध-परिस्थिति से कहीं अधिक व्यापक और सार्वभौमिक है। गीता का आरंभ अर्जुन विषाद से होता है, जो संपूर्ण ग्रंथ का केन्द्रीय आधार है। अर्जुन का विषाद सामान्य अर्थों में युद्ध का भय या भावनात्मक दुर्बलता नहीं है, बल्कि वह जीवन के अर्थ, कर्तव्य-बोध, नैतिक उत्तरदायित्व और आत्मिक मूल्यबोध से उत्पन्न एक गहन संकट है। युद्धभूमि में अपने ही स्वजनों, गुरुओं और संबंधियों को सामने देखकर अर्जुन जिस मानसिक द्वंद्व से गुजरता है, वह प्रत्येक संवेदनशील मानव की आंतरिक स्थिति का प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार अर्जुन केवल एक ऐतिहासिक पात्र नहीं रह जाता, बल्कि वह समस्त मानवता का प्रतिनिधि बन जाता है, जो निर्णय, उत्तरदायित्व और परिणामों के भार से ग्रस्त है। अर्जुन का विषाद जीवन और मृत्यु, धर्म और अधर्म, कर्तव्य और करुणा, व्यक्तिगत भावना और सामाजिक उत्तरदायित्व के बीच उत्पन्न टकराव को अभिव्यक्त करता है। यही टकराव उसे कर्म से विमुख होकर पलायन की ओर प्रेरित करता है। अर्जुन का यह पलायन-भाव आधुनिक अस्तित्ववादी दर्शन में वर्णित अस्तित्वगत संकट से गहरा साम्य रखता है, जहाँ व्यक्ति अपने निर्णयों की स्वतंत्रता और उनके अपरिहार्य परिणामों से भयभीत होकर अर्थहीनता का अनुभव करता है। आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में 'अस्तित्वगत चिंता' को मानव चेतना की एक मौलिक और अपरिहार्य स्थिति माना गया है। कीर्केगार्द ने इसे स्वतंत्रता से उत्पन्न चिंता कहा है, हाइडेगर ने इसे 'मृत्यु की ओर उन्मुख अस्तित्व' से जोड़ा है, जबकि सार्त्र के अनुसार यह चिंता

पूर्ण स्वतंत्रता और निरपेक्ष उत्तरदायित्व का परिणाम है। अस्तित्वगत चिंता का संबंध मृत्यु-बोध, जीवन की अर्थहीनता, अकेलेपन और निर्णय की अनिश्चितता से होता है। इन सभी तत्वों का स्पष्ट प्रतिबिंब अर्जुन के विषाद में दिखाई देता है। अर्जुन यह अनुभव करते है कि युद्ध में विजय, राज्य और भौतिक सुख भी उस मानसिक पीड़ा की भरपाई नहीं कर सकते, जो अपनों के वध से उत्पन्न होगी। यह अनुभूति जीवन की निरर्थकता का बोध कराती है, जो अस्तित्ववादी दर्शन का एक केंद्रीय विषय है।

इस शोधपत्र का प्रमुख उद्देश्य अर्जुन विषाद का पुनर्विश्लेषण आधुनिक अस्तित्ववादी दर्शन के संदर्भ में करना है। यह अध्ययन यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि भगवद्गीता केवल धार्मिक या आध्यात्मिक उपदेशों का संकलन नहीं है, बल्कि वह मानव अस्तित्व के संकटों का व्यावहारिक और दार्शनिक समाधान प्रस्तुत करती है। श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया उपदेश कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के माध्यम से अस्तित्वगत चिंता का समग्र समाधान प्रदान करता है, जिसमें न तो पलायन है और न ही निराशा, बल्कि जागरूक कर्म और अर्थपूर्ण जीवन की प्रेरणा है।

भगवद्गीता का प्रथम अध्याय केवल युद्धभूमि का दृश्य नहीं, बल्कि मनुष्य के आंतरिक संघर्ष, नैतिक असमंजस और अस्तित्वगत प्रश्नों का जीवंत चित्रण है। कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में खड़ा अर्जुन जब अपने ही स्वजनों—पितामह भीष्म, गुरु द्रोण, कुटुंबीजनों और मित्रों—को युद्ध के लिए तत्पर देखता है, तब वह गहन मानसिक और दार्शनिक संकट में पड़ जाता है। उसके शरीर का शिथिल होना, मुख का शुष्क होना, गाण्डीव का हाथ से गिर जाना, त्वचा का जलना—ये सभी केवल भावनात्मक दुर्बलता नहीं, बल्कि गहरे मानव जीवन के सार्वकालिक संकट का प्रतिनिधित्व करता है।'अर्जुन का विषाद तीन प्रमुख स्तरों पर प्रकट होता है—नैतिक

द्वंद्व, अस्तित्वगत भय और आत्मिक संकट।'[2] इन तीनों स्तरों का दार्शनिक विश्लेषण गीता के मूल संदेश को समझने में सहायक है।

अर्जुन का ***पहला*** और सबसे स्पष्ट ***संकट नैतिक द्वंद्व*** का है। वह प्रश्न करता है, क्या अपने ही स्वजनों का वध करना धर्म है? क्या राज्य, सत्ता और विजय के लिए गुरु, पितामह और भाइयों की हत्या उचित ठहराई जा सकती है?[3] अर्जुन के लिए युद्ध केवल राजनीतिक संघर्ष नहीं, बल्कि नैतिकता की कसौटी बन जाता है। वह सोचता है कि यदि युद्ध में विजय भी मिल जाए, तो उसका मूल्य क्या होगा, जब उसके अपने ही प्रियजन मारे जाएँगे? यह नैतिक द्वंद्व कर्तव्य (धर्म) और करुणा (मानवता) के टकराव का रूप है। क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध करना उसका कर्तव्य है, किंतु मानवीय संवेदना उसे रोकती है। अर्जुन को भय है कि इस युद्ध से कुल-नाश होगा, वर्ण-संकर उत्पन्न होगा और सामाजिक व्यवस्था नष्ट हो जाएगी। इस प्रकार उसका नैतिक संकट व्यक्तिगत न होकर सामाजिक और सांस्कृतिक भी बन जाता है। दार्शनिक दृष्टि से यह समस्या 'कर्तव्यवाद' और 'परिणामवाद' के बीच के द्वंद्व के समान है। अर्जुन परिणामों को देखकर कर्म से पीछे हटना चाहता है, जबकि गीता आगे चलकर उसे निष्काम कर्म का सिद्धांत प्रदान करती है। प्रथम अध्याय में यह नैतिक संकट प्रश्न के रूप में उपस्थित है, समाधान के रूप में नहीं।

अर्जुन का ***दूसरा संकट अस्तित्वगत भय*** से जुड़ा है। युद्धभूमि में खड़े होकर वह जीवन और मृत्यु के अर्थ पर विचार करने लगता है। वह कहता है कि ऐसे जीवन का क्या अर्थ है? जो अपने ही स्वजनों के रक्त से सना हो। उसे लगता है कि इस युद्ध के बाद जीवन में न तो सुख रहेगा और न ही शांति रहेगी। यह भय केवल मृत्यु का नहीं, बल्कि जीवन की निरर्थकता का भय है। अर्जुन के लिए जीवन का उद्देश्य पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों से जुड़ा हुआ है। जब वही मूल्य युद्ध में नष्ट होते दिखाई देते हैं, तो उसका अस्तित्व डगमगाने लगता है। यह स्थिति आधुनिक

अस्तित्ववादी दर्शन से मेल खाती है, जहाँ मनुष्य जीवन के अर्थ को लेकर संकटग्रस्त होता है। अर्जुन का यह भय हमें यह भी दिखाता है कि मनुष्य जब अत्यधिक भावनात्मक जुड़ाव में होता है, तब वह वर्तमान कर्तव्य से विमुख हो जाता है। उसका मन भविष्य के संभावित दुःखों और हानियों में उलझ जाता है। यह अस्तित्वगत संकट उसे निष्क्रियता की ओर ले जाता है, जहाँ वह युद्ध न करने का निर्णय लेना चाहता है।

अर्जुन का ***तीसरा और सबसे गहरा संकट आत्मिक*** है। वह आत्मा, पाप और मोक्ष को लेकर संशय में पड़ जाता है। उसका प्रश्न है, क्या इस युद्ध में लोगों की हत्या करने से उसे पाप लगेगा? क्या यह कर्म उसे नरक की ओर ले जाएगा? क्या ऐसा जीवन मोक्ष के मार्ग में बाधक नहीं होगा? यह आत्मिक संकट भारतीय दर्शन के मूल प्रश्नों से जुड़ा है। अर्जुन अभी आत्मा की अमरता और कर्म-सिद्धांत को स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाया है। इसलिए वह देह और आत्मा को एक मानकर भयभीत होता है। उसे लगता है कि शारीरिक वध ही आत्मिक विनाश है। यही अज्ञान आगे चलकर श्रीकृष्ण के उपदेश का आधार बनता है। दार्शनिक दृष्टि से यह संकट 'अविद्या' का परिणाम है। अर्जुन का ज्ञान आंशिक है, वह नैतिकता को जानता है, किंतु तत्वज्ञान से अपरिचित है। इसलिए उसका विवेक भ्रमित हो जाता है। यह आत्मिक संकट, उसे शरणागति की ओर ले जाता है, जहाँ वह श्रीकृष्ण से कहता है, "मैं आपका शिष्य हूँ, मुझे उपदेश दीजिए।"[4]

अर्जुन विषाद केवल एक योद्धा की भावनात्मक दुर्बलता नहीं, बल्कि मानव जीवन की गहन दार्शनिक समस्या है। यह विषाद नैतिक द्वंद्व, अस्तित्वगत भय और आत्मिक संकट, इन तीनों स्तरों पर मनुष्य की सीमाओं को उजागर करता है। गीता का प्रथम अध्याय समस्या-प्रधान है, समाधान-प्रधान नहीं। समाधान श्रीकृष्ण के उपदेशों में आगे विकसित होता है। अर्जुन का विषाद हमें यह सिखाता है कि जब मनुष्य केवल भावनाओं, संबंधों और अपूर्ण ज्ञान के आधार पर निर्णय करता है, तब वह भ्रम और निष्क्रियता का शिकार हो जाता है। परंतु यही विषाद ज्ञान,

विवेक और आत्मबोध की भूमिका भी बनता है। इस प्रकार अर्जुन विषाद नकारात्मक नहीं, बल्कि गीता-दर्शन का आवश्यक प्रारंभिक चरण है, जहाँ से कर्म, ज्ञान और भक्ति का महान दर्शन विकसित होता है।

I

अस्तित्वगत चिंता मानव जीवन की उन मूलभूत अनुभूतियों में से एक है, जहाँ व्यक्ति अपने अस्तित्व, स्वतंत्रता, निर्णय और मृत्यु के अर्थ को लेकर गहरे मानसिक और दार्शनिक संकट से गुजरता है। यह चिंता सामान्य भय से भिन्न होती है, क्योंकि इसका कोई बाह्य ठोस कारण नहीं होता; यह स्वयं अस्तित्व से उत्पन्न होती है। पाश्चात्य अस्तित्ववादी दर्शन में कीर्केगार्द, हाइडेगर और सार्त्र जैसे दार्शनिकों ने इस चिंता को मानव स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व के अनिवार्य परिणाम के रूप में समझाया है। भगवद्गीता के प्रथम अध्याय में अर्जुन की मानसिक स्थिति इन अवधारणाओं से साम्य रखती है। अर्जुन का विषाद केवल नैतिक या भावनात्मक संकट नहीं, बल्कि एक गहन अस्तित्वगत चिंता का प्रतीक है।

पाश्चात्य दर्शन में अस्तित्ववाद का मूल सरोकार मानव अस्तित्व, उसकी स्वतंत्रता और जीवन के अर्थ से है। अस्तित्ववादी दार्शनिकों के अनुसार मनुष्य किसी पूर्वनिर्धारित सार के साथ जन्म नहीं लेता, बल्कि अपने निर्णयों और कर्मों के माध्यम से अपने अस्तित्व का निर्माण करता है। यही स्वतंत्रता मनुष्य को महान भी बनाती है और भयग्रस्त भीबनाती है ।अस्तित्वगत चिंता उसी क्षण उत्पन्न होती है, जब व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वह पूर्णतः स्वतंत्र है और अपने चुनावों के लिए स्वयं उत्तरदायी है। यह चिंता बाह्य परिस्थितियों से नहीं, बल्कि आत्मबोध से जन्म लेती है। अर्जुन की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है—वह युद्ध करे या न करे, यह निर्णय उसी के हाथ में है, और इसी स्वतंत्रता का बोध उसे भीतर से विचलित कर देता है।[5] ***सॉरेन कीर्केगार्द*** को अस्तित्ववाद का जनक माना जाता है। उनके अनुसार 'चिंता भय से भिन्न है। भय किसी विशिष्ट

वस्तु से जुड़ा होता है, जबकि चिंता "कुछ नहीं" से उत्पन्न होती है। कीर्केगार्द ने चिंता को "स्वतंत्रता का चक्कर"[6]कहा है। जब मनुष्य यह अनुभव करता है कि वह स्वतंत्र है और अनेक संभावनाओं के सामने खड़ा है, तब वह मानसिक रूप से चकरा जाता है।अर्जुन की स्थिति इसी 'स्वतंत्रता के चक्कर' को दर्शाती है। वह युद्ध करने के लिए बाध्य नहीं है—न तो कृष्ण उसे अभी तक आदेश देते हैं और न ही कोई बाहरी शक्ति उसे विवश करती है। वह स्वयं निर्णय लेने की स्थिति में है। यही स्वतंत्रता उसे भयभीत करती है। वह सोचता है, 'यदि मैं युद्ध करूँ, तो पाप लगेगा; यदि न करूँ, तो कर्तव्यच्युत हो जाऊँगा।'[6] दोनों संभावनाएँ उसे चिंता में डाल देती हैं।कीर्केगार्द के अनुसार, चिंता मनुष्य को या तो पतन की ओर ले जाती है या आस्था की ओर। अर्जुन के संदर्भ में यह चिंता अंततः उसे शरणागति और ज्ञान की ओर ले जाती है, जब वह श्रीकृष्ण को अपना गुरु स्वीकार करता है। ***मार्टिन हाइडेगर*** ने अस्तित्वगत चिंता को 'Being-towards-death'[7] की अवधारणा से जोड़ा। उनके अनुसार, 'मनुष्य का अस्तित्व मूलतः मृत्यु की ओर उन्मुख है। जब मनुष्य अपनी मृत्यु और नश्वरता का साक्षात्कार करता है, तब वह एक गहरी अस्तित्वगत चिंता से भर उठता है।'[7] यह चिंता उसे सामान्य, भीड़-आधारित जीवन Das Man से बाहर निकालकर प्रामाणिक अस्तित्व की ओर ले जाती है।अर्जुन का संकट भी मृत्यु के साक्षात्कार से उत्पन्न है। युद्धभूमि में वह केवल अपनी संभावित मृत्यु से नहीं, बल्कि अपने प्रियजनों की निश्चित मृत्यु से साक्षात्कार करता है। यह स्थिति उसे झकझोर देती है। उसे लगता है कि यह युद्ध जीवन को अर्थहीन बना देगा। हाइडेगर की भाषा में कहें, तो 'अर्जुन अचानक अपने 'Being-towards-death' के प्रति सजग हो जाता है।यह सजगता उसे सामान्य योद्धा-चेतना से अलग कर देती है। वह युद्ध को अब केवल कर्तव्य या परंपरा के रूप में नहीं देख पाता, बल्कि उसे अस्तित्व के प्रश्न के रूप में अनुभव करता है, ऐसा जीवन, जो मृत्यु और हिंसा पर आधारित हो, उसका क्या अर्थ है?'[8] ***ज्याँ-पॉल सार्त्र*** ने

अस्तित्ववादी दर्शन को एक उग्र रूप दिया। उनके अनुसार "मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए अभिशप्त है"[9] (Man is condemned to be free)। मनुष्य की स्वतंत्रता अपरिहार्य है और वह अपने प्रत्येक कर्म के लिए पूर्णतः उत्तरदायी है। यही उत्तरदायित्व अस्तित्वगत भय (Anguish) को जन्म देता है।अर्जुन की चिंता सार्त्र के इस विचार से भी मेल खाती है। अर्जुन यह अनुभव करता है कि जो भी निर्णय वह लेगा, उसके परिणामों का भार उसी को उठाना होगा। यदि वह युद्ध करता है, तो हिंसा और पाप का दोष उसी पर आएगा; यदि नहीं करता, तो सामाजिक और नैतिक पतन का उत्तरदायित्व भी उसी का होगा।यह उत्तरदायित्व उसे भयग्रस्त कर देता है। वह निर्णय से पलायन करना चाहता है, युद्ध न करने का तर्क देकर वह इस भार से मुक्त होना चाहता है। सार्त्र के अनुसार, यही पलायन 'Bad Faith' का रूप है, जहाँ व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता से भागने का प्रयास करता है। अर्जुन का विषाद भी इसी प्रकार का क्षणिक पलायन है।[10]

अर्जुन की स्थिति पाश्चात्य अस्तित्ववादी अवधारणाओं से साम्य रखती हुई भी उनसे भिन्न है। जहाँ पाश्चात्य अस्तित्ववाद चिंता को अक्सर निरर्थकता और अकेलेपन की ओर ले जाता है, वहीं गीता में यह चिंता ज्ञान और मोक्ष का मार्ग खोलती है। अर्जुन की चिंता उसे नास्तिकता या निराशा की ओर नहीं, बल्कि गुरु-शरणागति और आत्मबोध की ओर ले जाती है।अर्जुन स्वतंत्र है, किंतु उसकी स्वतंत्रता अहंकार-आधारित नहीं, बल्कि धर्म और तत्वज्ञान से जुड़ने योग्य है। उसकी अस्तित्वगत चिंता अंततः उसे आत्मा, कर्म और ब्रह्म के गूढ़ सत्य की ओर अग्रसर करती है। अस्तित्वगत चिंता मानव जीवन की एक सार्वकालिक दार्शनिक समस्या है। कीर्केगार्द, हाइडेगर और सार्त्र ने इसे स्वतंत्रता, मृत्यु और उत्तरदायित्व से जोड़कर समझाया है। अर्जुन की मानसिक स्थिति इन सभी अवधारणाओं से गहरा साम्य रखती है। वह स्वतंत्रता के चक्कर में फँसा हुआ, मृत्यु के साक्षात्कार से व्याकुल और अपने निर्णयों के उत्तरदायित्व से भयभीत दिखाई देता है।फिर भी, अर्जुन का संकट केवल चिंता का अंत नहीं, बल्कि

दर्शन का प्रारंभ है। उसकी अस्तित्वगत चिंता गीता के उपदेशों के माध्यम से कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्ति योग की भूमिका बनती है। इस प्रकार अर्जुन का विषाद भारतीय परंपरा में अस्तित्वगत चिंता का एक सार्थक और रूपांतरणकारी उदाहरण प्रस्तुत करता है।

II

जब अर्जुन विषाद का अस्तित्ववाद के साथ तुलनात्मक विश्लेषण करते है तो यह दृष्टीगोचर होता है कि आधुनिक पाश्चात्य अस्तित्ववादी दर्शन में जिस प्रकार जीवन की निरर्थकता, चिंता और आत्म-संकट को केन्द्रीय विषय बनाया गया है, उसी प्रकार अर्जुन का विषाद भी जीवन के अर्थ पर प्रश्नचिह्न लगाता है। विशेषतः सार्त्र की *Nausea* (नॉजिया) और कीर्केगार्द की *Anxiety* (एंग्जायटी) की अवधारणाओं से अर्जुन की स्थिति तुलनीय प्रतीत होती है। फिर भी, इन दोनों परंपराओं के निष्कर्ष और समाधान मूलतः भिन्न हैं।कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में अर्जुन जिस मानसिक अवस्था में पहुँचता है, वहाँ उसे जीवन के सभी मूल्य खोखले प्रतीत होने लगते हैं। वह स्पष्ट शब्दों में कहता है कि उसे न तो विजय चाहिए, न राज्य, न सुख।[11] यदि इन सबके लिए उसे अपने ही स्वजनों का वध करना पड़े, तो ऐसे जीवन का क्या अर्थ है? यह अनुभव जीवन की निरर्थकता का है, जहाँ स्थापित मूल्य, धर्म, कर्तव्य, वीरता सब संदिग्ध हो जाते हैं।यह स्थिति अस्तित्ववादी दर्शन की मूल भावना से मेल खाती है, जहाँ व्यक्ति अचानक संसार को अर्थहीन और असंगत अनुभव करने लगता है। अर्जुन का विषाद इसी प्रकार का क्षण है, जहाँ बाहरी युद्ध एक आंतरिक दार्शनिक संघर्ष में बदल जाता है।

वही ज्याँ-पॉल सार्त्र ने अपने उपन्यास *Nausea* में जीवन की निरर्थकता और अस्तित्वगत वितृष्णा का चित्रण किया है। 'नॉजिया' वह अनुभव है, जहाँ व्यक्ति संसार की वस्तुओं, संबंधों और मूल्यों को अचानक व्यर्थ और बोझिल महसूस करने लगता है। यह वितृष्णा किसी नैतिक

अपराध-बोध से नहीं, बल्कि जीवन की अर्थहीनता की तीव्र अनुभूति से उत्पन्न होती है।अर्जुन की स्थिति भी इसी प्रकार की है। युद्धभूमि में खड़े होकर वह अपने जीवन, संबंधों और सामाजिक दायित्वों को एक अजीब वितृष्णा की दृष्टि से देखने लगता है। गुरु, पितामह और बंधु,जो अब तक सम्मान और सुरक्षा के प्रतीक थे। अब हिंसा और मृत्यु के कारण बन जाते हैं। इस अनुभव से अर्जुन को जीवन से एक प्रकार की घृणा-सी होने लगती है। परंतु एक महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि सार्त्र के पात्र की नॉजिया प्रायः निरर्थकता में ही ठहर जाती है, जबकि अर्जुन का विषाद आगे किसी समाधान की भूमिका बनता है। अतित्वावादी दार्शनिक कीर्केगार्द ने चिंता (Anxiety) को "स्वतंत्रता का चक्कर" कहा है। उनके अनुसार, जब मनुष्य यह अनुभव करता है कि वह स्वतंत्र है और उसे स्वयं निर्णय लेना है, तब वह भय और चिंता से भर जाता है। यह चिंता किसी बाहरी खतरे से नहीं, बल्कि संभावनाओं की बहुलता से उत्पन्न होती है।[12]अर्जुन की चिंता भी इसी प्रकार की है। वह युद्ध करने या न करने दोनों संभावनाओं के बीच खड़ा है। दोनों ही मार्ग उसे पाप, पतन या दुःख की ओर ले जाते प्रतीत होते हैं। यही स्वतंत्रता उसे विचलित कर देती है। वह निर्णय से पलायन करना चाहता है और अपने धनुष को त्याग देता है। यह अवस्था कीर्केगार्दीय चिंता का सजीव उदाहरण है।

अर्जुन विषाद, सार्त्र की नॉजिया और कीर्केगार्द की एंग्जायटी, तीनों में कुछ मूलभूत समानताएँ स्पष्ट हैं। इन तीनों स्थितियों में व्यक्ति जीवन के अर्थ पर प्रश्न करता है,स्थापित सामाजिक और नैतिक मूल्य संदिग्ध हो जाते हैं औरव्यक्ति स्वयं को अकेला और निर्णय के भार से दबा हुआ अनुभव करता है।इस दृष्टि से अर्जुन को एक प्राचीन भारतीय "अस्तित्ववादी" कहा जा सकता है, जो युद्धभूमि में खड़े होकर वही प्रश्न पूछ रहा है, जो आधुनिक यूरोपीय दार्शनिकों ने अपने युग में उठाए। जहाँ यह तुलनात्मकता सार्थक है, वहीं दोनों परंपराओं में एक मौलिक अंतर भी है। पाश्चात्य अस्तित्ववाद, विशेषतः सार्त्र,अक्सर निरर्थकता के स्वीकार, विद्रोह या आत्मनिर्माण तक सीमित रह जाता है। वहाँ कोई दैवी या

तत्वमीमांसीय समाधान नहीं दिया जाता। मनुष्य को स्वयं ही अर्थ गढ़ना पड़ता है, चाहे वह अर्थ अस्थायी और संघर्षपूर्ण ही क्यों न हो।इसके विपरीत, गीता अर्जुन के विषाद को अंतिम सत्य नहीं मानती। वह इसे अज्ञान और अविवेक की अवस्था बताकर उससे ऊपर उठने का मार्ग दिखाती है। श्रीकृष्ण के उपदेश अर्जुन को यह सिखाते हैं कि जीवन की सार्थकता न तो भोग में है और न ही पलायन में, बल्कि निष्काम कर्म, आत्मज्ञान और धर्मयुक्त आचरण में है।

अर्जुन विषाद और पाश्चात्य अस्तित्ववाद के बीच गहरा दार्शनिक साम्य होते हुए भी उनके निष्कर्ष भिन्न हैं। अर्जुन का विषाद सार्त्र की नॉजिया और कीर्केगार्द की एंग्जायटी की भाँति जीवन की निरर्थकता और अस्तित्वगत चिंता को प्रकट करता है। परंतु जहाँ पाश्चात्य अस्तित्ववाद अक्सर निराशा, विद्रोह या अकेलेपन पर समाप्त हो जाता है, वहीं भगवद्गीता आशा, ज्ञान और समाधान का मार्ग प्रस्तुत करती है। इस प्रकार अर्जुन विषाद भारतीय दर्शन में अस्तित्वगत संकट का एक ऐसा रूप है, जो अंततः मानव जीवन को उच्चतर अर्थ और दिशा प्रदान करता है।

III

भगवद्गीता का केन्द्रीय दार्शनिक महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि वह अर्जुन के अस्तित्वगत संकट को केवल पहचानती ही नहीं, बल्कि उसका समग्र समाधान भी प्रस्तुत करती है। कुरुक्षेत्र में अर्जुन जिस मानसिक अवस्था से गुजरता है, वह आधुनिक अस्तित्ववादी दर्शन में वर्णित चिंता, निरर्थकता और अकेलेपन से गहरा साम्य रखती है। जीवन के अर्थ, कर्म के औचित्य, मृत्यु के भय और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व—इन सभी प्रश्नों से जूझता हुआ अर्जुन एक ऐसे समाधान की तलाश में है, जो केवल तर्कात्मक नहीं, बल्कि जीवनोपयोगी हो। श्रीकृष्ण का उपदेश इसी संदर्भ में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के माध्यम से अर्जुन को अस्तित्वगत समाधान प्रदान करता है।

कर्मयोग गीता का प्रथम और आधारभूत समाधान है। अर्जुन की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह अपने कर्मों को अहंकार और परिणाम-आसक्ति के साथ जोड़कर देख रहा है। वह सोचता है कि "मैं" अपने स्वजनों का वध करूँगा और "मैं" ही इस पाप का भागी बनूँगा। यही कर्ता-भाव और फल-आसक्ति उसकी अस्तित्वगत चिंता को जन्म देती है।श्रीकृष्ण कर्मयोग के माध्यम से अर्जुन को निष्काम कर्म का सिद्धांत देते हैं, कर्म करना मनुष्य का स्वाभाविक और अपरिहार्य कर्तव्य है, किंतु उसके फल पर अधिकार नहीं है। जब व्यक्ति कर्म को अहंकार की अभिव्यक्ति के रूप में करता है, तब वह उसके परिणामों से बँध जाता है। इसके विपरीत, जब कर्म को कर्तव्य और यज्ञ के रूप में किया जाता है, तब वह बंधन का कारण नहीं बनता।अस्तित्वगत दृष्टि से कर्मयोग अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक अस्तित्ववाद में व्यक्ति निर्णय के भार से भयभीत हो जाता है, क्योंकि वह स्वयं को पूर्ण कर्ता मानता है। गीता इस भार को हल्का कर देती है, कर्तृत्व का शोधन कर के। अर्जुन को यह बोध कराया जाता है कि वह केवल निमित्त मात्र है; व्यापक नैतिक और दैवी व्यवस्था के अंतर्गत उसका कर्म घटित हो रहा है।इस बोध से अर्जुन की चिंता कम होती है। अब कर्म उसके लिए अहंकार का विस्तार नहीं, बल्कि धर्म का पालन बन जाता है। परिणाम की चिंता से मुक्त होकर किया गया कर्म मन को स्थिरता देता है और अस्तित्वगत भय को शांत करता है। इस प्रकार कर्मयोग जीवन की निरर्थकता की अनुभूति को कर्तव्य-बोध और नैतिक स्पष्टता में रूपांतरित कर देता है।

अर्जुन की अस्तित्वगत चिंता का दूसरा मूल कारण मृत्यु का भय है। युद्धभूमि में वह मृत्यु को केवल शारीरिक विनाश के रूप में नहीं, बल्कि सम्पूर्ण अस्तित्व के अंत के रूप में देख रहा है। यही दृष्टि उसे भीतर से विचलित कर देती है। श्रीकृष्ण ***ज्ञानयोग*** के माध्यम से इस भ्रांति को दूर करते हैं।ज्ञानयोग का केंद्रीय उपदेश है, आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है। शरीर नश्वर है, किंतु आत्मा अविनाशी है।[13] जब अर्जुन यह समझने लगता है कि मृत्यु केवल देह का परिवर्तन है, आत्मा का नहीं, तब उसका भय

धीरे-धीरे कम होने लगता है। अस्तित्वगत चिंता का मूल आधार, नश्वरता का आतंक यहाँ कमजोर पड़ जाता है। दार्शनिक दृष्टि से यह बोध अत्यंत क्रांतिकारी है। पाश्चात्य अस्तित्ववाद में मृत्यु को अंतिम और निरपेक्ष सत्य माना गया है, जिसके सामने मनुष्य अकेला खड़ा होता है। इसके विपरीत, गीता मृत्यु को अस्तित्व का अंत नहीं, बल्कि एक अवस्था-परिवर्तन मानती है। यह दृष्टि जीवन को व्यापक अर्थ प्रदान करती है।ज्ञानयोग अर्जुन को देह और आत्मा के भेद का विवेक देता है । जब यह भेद स्पष्ट होता है, तब कर्म करते समय भावनात्मक अतिरेक कम हो जाता है। अर्जुन समझने लगता है कि वह किसी का वास्तविक विनाश नहीं कर रहा, बल्कि केवल धर्म के अनुरूप कर्म कर रहा है। इस प्रकार ज्ञानयोग अस्तित्वगत चिंता को बौद्धिक और आध्यात्मिक स्पष्टता में रूपांतरित करता है।

अस्तित्वगत चिंता का एक गहरा कारण मनुष्य का अकेलापन भी है। आधुनिक अस्तित्ववाद में व्यक्ति एक ऐसे ब्रह्मांड में खड़ा दिखाई देता है, जहाँ कोई परम आधार या सहारा नहीं है। यह अकेलापन चिंता और निराशा को और गहरा कर देता है। गीता का ***भक्तियोग*** इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है। भक्तियोग जीवन को अर्थ और उद्देश्य प्रदान करता है। जब व्यक्ति अपने समस्त कर्म, विचार और भावनाएँ ईश्वर को समर्पित कर देता है, तब वह स्वयं को अकेला नहीं अनुभव करता। ईश्वर के साथ संबंध स्थापित होना अस्तित्व को एक स्थायी आधार देता है। अर्जुन के लिए श्रीकृष्ण केवल सारथी नहीं रहते, बल्कि जीवन के मार्गदर्शक और परम आश्रय बन जाते हैं। भक्ति का अर्थ अंधविश्वास नहीं, बल्कि विश्वासपूर्ण समर्पण है। यह समर्पण व्यक्ति के अहंकार को गलाकर उसे व्यापक सत्ता से जोड़ देता है। अस्तित्वगत दृष्टि से यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि चिंता का एक बड़ा कारण "मैं अकेला हूँ" की अनुभूति है। भक्तियोग इस अनुभूति को "मैं आश्रित हूँ" के भाव में बदल देता है।भक्तियोग के माध्यम से अर्जुन को यह बोध होता है कि जीवन केवल व्यक्तिगत संघर्ष नहीं, बल्कि ईश्वर की लीला का अंग है। इससे उसका भय, संशय और

अकेलापन कम होता है। जीवन में उद्देश्य और दिशा स्पष्ट हो जाती है।[14] श्रीकृष्ण का उपदेश अर्जुन के अस्तित्वगत संकट का एक समग्र समाधान प्रस्तुत करता है। कर्मयोग कर्तृत्व-भाव और परिणाम-आसक्ति को शुद्ध कर अस्तित्वगत चिंता को कम करता है; ज्ञानयोग आत्मा की अमरता का बोध कराकर मृत्यु-भय का निराकरण करता है और भक्तियोग जीवन को अर्थ, आश्रय और उद्देश्य प्रदान कर अकेलेपन से मुक्ति दिलाता है। इस प्रकार गीता का समाधान केवल दार्शनिक तर्क नहीं, बल्कि जीवन-व्यवहार का मार्गदर्शन है। जहाँ पाश्चात्य अस्तित्ववाद अक्सर समस्या को गहराई से पहचानकर छोड़ देता है, वहीं श्रीकृष्ण का उपदेश उस समस्या को रूपांतरित कर मानव जीवन को आशा, संतुलन और अर्थ प्रदान करता है।

IV

भगवद्गीता केवल प्राचीन युद्धभूमि में दिया गया उपदेश नहीं है, बल्कि वह मानव जीवन की सार्वकालिक समस्याओं का दार्शनिक समाधान प्रस्तुत करने वाला ग्रंथ है। अर्जुन का विषाद जिस प्रकार नैतिक भ्रम, मानसिक तनाव और अस्तित्वगत चिंता का प्रतीक है, उसी प्रकार आधुनिक मानव भी इन्हीं संकटों से जूझ रहा है। प्रतिस्पर्धा, उपभोक्तावाद और तकनीकी जीवन-शैली ने मनुष्य के जीवन को सुविधाजनक तो बनाया है, परंतु उसके अर्थ और उद्देश्य को और अधिक जटिल भी कर दिया है। ऐसे समय में गीता का समन्वयात्मक दर्शन कर्म, ज्ञान और भक्ति का संतुलन आधुनिक मानव के लिए अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है। आज का मानव निरंतर नैतिक दुविधाओं से घिरा हुआ है। व्यक्तिगत सफलता, सामाजिक अपेक्षाएँ और आर्थिक दबाव उसे ऐसे निर्णय लेने के लिए बाध्य करते हैं, जहाँ सही और गलत की रेखा धुंधली हो जाती है। कार्यस्थल पर प्रतिस्पर्धा, शिक्षा में अंक और रैंक की दौड़, तथा सामाजिक मीडिया द्वारा निर्मित तुलना का वातावरण मानसिक तनाव को बढ़ाता है। इस स्थिति में व्यक्ति स्वयं से यह प्रश्न करने लगता है। मैं क्यों कर रहा हूँ, किसके लिए

कर रहा हूँ, और इसका अंतिम अर्थ क्या है? तकनीकी जीवन-शैली ने मनुष्य को बाहरी रूप से जोड़ दिया है, परंतु आंतरिक रूप से उसे अकेला बना दिया है। निरंतर सूचनाओं की बाढ़, आभासी संबंध और त्वरित संतुष्टि की संस्कृति मन को अस्थिर करती है। यह स्थिति आधुनिक अस्तित्वगत चिंता का रूप ले लेती है, जहाँ जीवन अर्थहीन, यांत्रिक और बोझिल प्रतीत होने लगता है। यह अवस्था अर्जुन के विषाद से गहरे स्तर पर जुड़ती है। गीता की विशेषता यह है कि वह जीवन को किसी एकांगी दृष्टि से नहीं देखती। वह कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों को समन्वित करके एक संतुलित जीवन-दर्शन प्रस्तुत करती है। यह समन्वय आधुनिक मानव की खंडित जीवन-स्थिति के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।[15] पाश्चात्य आधुनिकता में जीवन के विभिन्न पक्ष कार्य, विचार और भाव अलग-अलग दिशाओं में खिंचते दिखाई देते हैं। गीता इन सभी को एक सूत्र में पिरो देती है। उसका संदेश यह नहीं है कि कर्म छोड़ दो, संसार से पलायन कर लो, या केवल भावनाओं में बह जाओ; बल्कि यह है कि कर्म करो, समझ के साथ करो और समर्पण के भाव से करो।

आधुनिक मानव का अधिकांश तनाव कार्य-क्षेत्र से जुड़ा है। सफलता की अंधी दौड़, असफलता का भय और परिणाम-आसक्ति मन को अशांत करती है। गीता का कर्मयोग इस संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है। निष्काम कर्म का सिद्धांत व्यक्ति को यह सिखाता है कि कर्म करना उसका दायित्व है, किंतु उसका मूल्य केवल परिणामों से नहीं आँका जाना चाहिए।जब व्यक्ति कर्म को केवल उपलब्धियों और पुरस्कारों से जोड़ता है, तब असफलता उसे भीतर से तोड़ देती है। कर्मयोग इस तनाव को कम करता है, क्योंकि वह कर्म को कर्तव्य और सेवा के रूप में देखने की दृष्टि देता है। इससे आधुनिक मानव अपने कार्य में संतुलन और आंतरिक शांति अनुभव कर सकता है। आधुनिक जीवन में सूचनाओं की अधिकता है, परंतु ज्ञान की कमी। ज्ञानयोग व्यक्ति को विवेक और आत्मबोध प्रदान करता है। देह, मन और आत्मा के भेद को समझकर व्यक्ति अपनी सीमाओं और क्षमताओं को

पहचानता है। इससे अहंकार और हीनभाव दोनों का संतुलन होता है।अस्तित्वगत चिंता का एक बड़ा कारण यह है कि आधुनिक मानव स्वयं को केवल उसकी भूमिका पेशा, पद, पहचान तक सीमित कर लेता है। ज्ञानयोग उसे यह स्मरण कराता है कि उसका अस्तित्व इन भूमिकाओं से कहीं व्यापक है। यह बोध मानसिक तनाव को कम करता है और जीवन को गहराई प्रदान करता है।[16] आधुनिक मानव भावनात्मक रूप से भी अस्थिर है। संबंधों की अस्थायित्वता और आत्मकेंद्रित जीवन-शैली ने उसे भीतर से अकेला बना दिया है। गीता का भक्तियोग इस अकेलेपन का समाधान प्रस्तुत करता है। ईश्वर के प्रति विश्वास और समर्पण व्यक्ति को एक स्थायी आश्रय प्रदान करता है। भक्तियोग जीवन को उद्देश्य देता है। जब व्यक्ति अपने कर्म और जीवन को किसी उच्चतर मूल्य या सत्ता से जोड़ता है, तब उसका अस्तित्व अर्थपूर्ण हो जाता है। यह दृष्टि आधुनिक मानव को केवल उपभोक्ता नहीं, बल्कि उत्तरदायी और संवेदनशील प्राणी बनाती है।आधुनिक मानव और अर्जुन के बीच ऐतिहासिक दूरी अवश्य है, किंतु उनके अस्तित्वगत प्रश्न लगभग समान हैं। नैतिक भ्रम, मानसिक तनाव और जीवन के अर्थ को लेकर संशय ये समस्याएँ कालातीत हैं। गीता का समन्वयात्मक दर्शन कर्म, ज्ञान और भक्ति के संतुलन के माध्यम से इन समस्याओं का समग्र समाधान प्रस्तुत करता है।आज के युग में, जहाँ जीवन खंडित और असंतुलित होता जा रहा है, गीता का संदेश और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है। वह आधुनिक मानव को न तो कर्म से पलायन का उपदेश देती है और न ही अंधभक्ति का, बल्कि विवेकपूर्ण कर्म, आत्मबोध और समर्पण के माध्यम से एक संतुलित, अर्थपूर्ण और शांत जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

प्रस्तुत शोधपत्र का ***निष्कर्ष*** यह स्पष्ट करता है कि अर्जुन विषाद को केवल एक ऐतिहासिक या धार्मिक प्रसंग के रूप में समझना भगवद्गीता के दार्शनिक मर्म को सीमित कर देता है। जब अर्जुन के विषाद को *अस्तित्वगत चिंता*के रूप में देखा जाता है, तब गीता का वास्तविक बौद्धिक और दार्शनिक विस्तार सामने आता है। अर्जुन का संकट किसी एक योद्धा या

एक युग तक सीमित नहीं है, बल्कि वह उस सार्वकालिक मानवीय अवस्था का प्रतीक है, जहाँ मनुष्य नैतिक दुविधा, निर्णय के भार, मृत्यु के भय और जीवन के अर्थ को लेकर गहरे असमंजस में पड़ जाता है।अर्जुन का विषाद आधुनिक अस्तित्ववादी दर्शन में वर्णित चिंता, निरर्थकता और अकेलेपन से गहरा साम्य रखता है। युद्धभूमि में खड़ा अर्जुन वही प्रश्न करता है, जो आधुनिक मानव प्रतिस्पर्धा, उपभोक्तावाद और तकनीकी जीवन-शैली के बीच पूछ रहा है, मैं क्यों करूँ, किसके लिए करूँ, और मेरे कर्मों का अंतिम अर्थ क्या है? इस दृष्टि से अर्जुन का विषाद हर युग के मानव का विषाद बन जाता है। गीता इस मानवीय संकट को नकारती नहीं, बल्कि उसे स्वीकार कर उसके मूल कारणों की पहचान करती है।इस शोध का एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी है कि गीता की विशेषता केवल समस्या-निर्देशन में नहीं, बल्कि समाधान-प्रस्तुति में निहित है। पाश्चात्य अस्तित्ववाद जहाँ प्रायः चिंता और निरर्थकता के विश्लेषण तक सीमित रह जाता है, वहीं गीता कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के समन्वय के माध्यम से अस्तित्वगत संकट का समग्र समाधान प्रस्तुत करती है। कर्मयोग कर्तृत्व-भाव और परिणाम-आसक्ति को शुद्ध कर मानसिक तनाव को कम करता है; ज्ञानयोग आत्मा की अमरता का बोध कर मृत्यु-भय का निराकरण करता है; और भक्तियोग जीवन को अर्थ, आश्रय और उद्देश्य प्रदान कर अकेलेपन से मुक्ति दिलाता है।अतः यह स्पष्ट होता है कि भगवद्गीता केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि मानव अस्तित्व के गहन संकटों का समाधान प्रस्तुत करने वाला एक सशक्त दार्शनिक ग्रंथ है। अर्जुन का विषाद हमें यह सिखाता है कि चिंता और संकट मनुष्य की दुर्बलता नहीं, बल्कि ज्ञान और आत्मबोध की भूमिका हो सकते हैं। श्रीकृष्ण का उपदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक और सार्थक है, क्योंकि वह आधुनिक मानव को संतुलित, अर्थपूर्ण और विवेकपूर्ण जीवन जीने की दिशा प्रदान करता है।

सन्दर्भ:

1- **Bhagavad Gita. (2014).** *The Bhagavad Gita* (S. Radhakrishnan, Trans.). New Delhi: Harper Collins. pp. 23–24

2- **Ibid**pp. 21–27

3- Ibid pp. 23–24)

4- Gita Press. (2019). *Shrimad Bhagavad Gita* (Hindi ed.). Gorakhpur: Gita Press. pp 48

5- भट्टाचार्य, हृदय नारायण**.** *अस्तित्ववाद के मुख्य विचारक*. राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ 45-52.

6- Kierkegaard, Søren. *The Concept of Anxiety: A Simple Psychologically Orienting Deliberation on the Dogmatic Issue of Hereditary Sin*. Edited and translated by Reidar Thomte, Princeton University Press, 1980, pp. 42-45.

7- तिवारी, डॉ. एन. पी**.** *समकालीन पाश्चात्य दर्शन*. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, पृष्ठ 215-220 (हाइडेगर के अस्तित्ववाद पर चर्चा)।

8- मिश्र, हृदय नारायण. *अस्तित्ववाद की समीक्षा*. साहित्य भवन, पृष्ठ 188-192 (हाइडेगर और मृत्यु बोध)।

9- Sartre, Jean-Paul. *Existentialism is a Humanism*. Edited by John Kulka, Yale University Press, 2007, p. 29.

10- Flynn, Thomas**.** *Existentialism: A Very Short Introduction*. Oxford University Press, 2006, pp. 68-72 (Bad Faith और Responsibility पर चर्चा)।

11- Radhakrishnan, **S.** *The Bhagavadgita*. HarperCollins, 1993, pp. 88-92 (अध्याय 1 पर टीका)।

12- Kierkegaard, Søren. *The Concept of Anxiety: A Simple Psychologically Orienting Deliberation on the Dogmatic Issue of Hereditary Sin*. Princeton University Press, 1980, pp. 61-62

13- Radhakrishnan, S. *The Bhagavadgita: With an Introductory Essay, Sanskrit Text, English Translation, and Notes*. Harper Collins Publishers, 1993, pp. 107-108.

14- Radhakrishnan, S. *The Bhagavadgita*. Harper Collins, 1993, pp. 105-110

15- Tilak, B. G. *Srimad Bhagavad Gita Rahasya*. Tilak Bros, 1935, pp. 452-458.

16- डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, हिन्दू जीवन दर्शन, पृष्ठ 115–120

Copyright © 2025 Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).